International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 06-06-2021, Accepted: 20-06-2021, Published: 06-07-2021
Volume 7, Issue 4, 2021, Page No. 11-15

विभाजन का दर्द और मंटो की कहानी 'गुरमुख सिंह की वसीयत'

पंकज कुमार सहनी
शोधार्थी, हिंदी विभाग, तेजपुर विश्वविद्यालय, तेजपुर, असम, भारत

सारांश
आजादी के सत्तर साल बाद भी बंटवारें के दर्द की कराहें अभी तक महसूस होती है। विभाजन की वह वीभत्स कहानियाँ और उन कहानियों में मानव जाति का संहार निश्चय ही दोनों कौमों के लिए हृदय विदारक रहा है। इस दर्द को केवल हिन्दू या मुसलमान किसी एक जमात ने अकेले नहीं सहा था। बल्कि दोनों ने बराबर सहा था। यह दर्द दोनों के हिस्से बराबर आया था। दोनों ने उतनी ही बर्बरता से एक-दूसरे के लहू बहाए थे। यह घटना इकलौती एक ऐसी दर्दनाक और भयानक घटना थी जिसने न केवल दो भाइयों (हिन्दू-मुस्लिम) को अलग-थलग किया था वरन् एक-दूसरे के खून के प्यासे भी बना दिये गये थे। 'इंसानियत' और 'मानवता' शब्द को शब्दकोश में दफ़न कर दिए गए थे और अपने ही भाइयों की निर्मम हत्या की जा रही थी। राखी बंधवाने योग्य बहनों का सरेआम उनके वालिद के समक्ष बलात्कार किया जा रहा था। प्रतिकार करने पर अब्बुओं के सिर पत्थरों के हवाले कर दिए जाते थे। पेट्रोल छिड़क कर आग लगा दी जाती थी। उनकी संपत्ति को लुटा जा रहा था। हर तरफ बिछी लाशें और उसपर मंडराती चील मानो मानव जाति के अंत का संकेत दे रही थी। विभाजन के दौरान हुए इन मजहबी दंगों ने कितने लोगों की जान ली, कितने मासूमों की इज्जत लुटी इसका सही-सही अनुमान आज तक नहीं लगाया जा सका है। सौम्या गुप्ता अपने एक लेख में इस अनुमान का जिक्र करते हुए कहती है कि, "1947 के विभाजन में 5 लाख से 10 लाख के बीच औरत, मर्द और बच्चे ज़िन्दगी से हाथ धो बैठे, 70 हजार से ज्यादा महिलाओं के साथ बलात्कार हुआ और तकरीबन 1 करोड़ 20 लाख लोग अपने घरों को छोड़कर भागे।"[1] वास्तव में विभाजन के दौरान हुए उन दंगों में मौत और विस्थापन में हुए बेघरों का सही-सही आकड़ों में अनुमान लगाना सहज कार्य नहीं था। इस विभाजन और दंगों से मिली घाव आज तक सूखे नहीं हैं। समय-समय पर इसकी टिस हमें आज भी बेचैन करती रहती है। विभाजन से मिले इस टीस और दर्द को साहित्यकारों ने लगातार अपने उपन्यासों, अपनी कहानियों आदि के माध्यम से साझा किया तथा इस टीस ने सदा इस बात का एहसास भी कराया कि विभाजन ने हमें ख़तम न होने वाली वेदना प्रदान की है। मंटो की कहानी 'गुरुमुख सिंह की वसीयत' विभाजन से मिले इसी दर्द और उसकी टीस को बयाँ करती है|

मूलशब्द: साम्प्रदायिकता, विभाजन, सौहार्द

प्रस्तावना

हम सभी इस बात से भलीभांति अवगत है कि आजादी मिलने के बाद से ही सांप्रदायिक दंगे और मुखर हो गयी थी। दंगे और विस्थापन के बीच जन्में इस लोकतान्त्रिक देश को काफी जान-माल का नुकसान उठाना पड़ा था। मुस्लिम लीग तथा जिन्ना की अगुवाई में जिस द्विराष्ट्र सिद्धांत के आधार पर देश का बंटवारा हुआ था वह देखते ही देखते घोर

हिंसक रूप धारण कर लिया था। लगातार दंगे और आगजनी ने दोनों कौमों को दहशत में डाल दिया था। और ये सब राष्ट्रवाद और धर्म के नाम पर किया गया था। मोहम्मद अल्ली जिन्ना एवं मुस्लिम लीग का यह मानना था कि "हर धार्मिक समुदाय एक अलग राष्ट्र का निर्माण करता है"[2] । परन्तु इसके बावजूद भी भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र ही बना रहा जिसमें हिन्दू, मुस्लिम, सिख, इसाई आदि अनेक धर्मों एवं मज़हबों के लोग रह गए थे। एक तरह से इतनी भारी तादाद में अल्पसंख्यकों का भारत में रुक जाना तथा पाकिस्तान में हिन्दुओं का रुक जाना तमाचा था उन धर्म के ठेकेदारों पर जिन्होंने धर्म के आधार पर देश को दो हिस्सों में बंटवाया था। सन् 1971 में पाकिस्तान से अलग होकर बांग्लादेश ने भी इस बात की पुष्टि कर दी कि धर्म के आधार पर लोगों को इकट्ठा रखना काफ़ी नहीं है। धर्म के आधार पर किये गए इस विभाजन पर टिप्पणी करते हुए अरविन्द मोहन ने लिखा है कि, "इतिहास में राजनैतिक रूप से बिखरे रह कर भी सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक रूप से एक रहे हिंदुस्तान का यह विभाजन एकदम ही अजीब चीज को आधार मान कर किया गया। मजहब के आधार पर देश नहीं बँटते हैं। अपने यहाँ यही हुआ।"[3] देश का इस तरह से बँटना निहायत सबके लिए नागवार था। इस विभाजन के बाद उपजी सांप्रदायिक दंगे आज देश के तीनों टुकड़ों में मौजूद है। तीन टुकड़े हो कर भी हिंदुस्तान, पाकिस्तान और बांग्लादेश में मजहबी दंगे होते हैं। अलग होकर भी इन देशों में आज तक साम्प्रदायिकता ख़तम नहीं हुई है। और यह समस्या आज भी इन तीनों मुल्कों को शांति से रहने नहीं देती है। सुरक्षा के नाम पर देश की अर्थ-व्यवस्था का एक बड़ा हिस्सा सेना पर खर्च किया जाता है। फिर भी आतंकी हमले और घुसपैठ में कोई कमी नजर नहीं आ रही। यह एक ज्वलंत समस्या है जो हमेशा गहन अध्ययन की मांग करता रहेगा।

सन् 1947 में मिली आजादी और आजादी मिलते ही दोनों मुल्कों का अलग हो जाना महज एक इत्तिफ़ाक नहीं था। यह आगाज था दिलों में नफरत फ़ैलने का, इंसानियत को शर्मसार करने का। यह आजादी नहीं, आजादी के रूप में मिली नफरत की भावना थी जिसने सरेआम मानवता का ह्रास किया था। अरविन्द मोहन ने इस आजादी और बँटवारे की घटना को अपने लेख 'विभाजन की विरासत' में कुछ इस प्रकार लिखा है कि, "देश का बँटवारा हिंदुस्तान के अबतक के ज्ञात इतिहास की शायद सबसे बड़ी घटना है। इतनी बड़ी और इतने लोगों को प्रभावित करनेवाली कि देश की आजादी भी आज इसके आगे छोटी घटना लगती है।"[4] मंटो ने इस आजादी को अपनी आँखों से देखा था। उनकी आँखों के सामने ही हिंदुस्तान और पाकिस्तान दो टुकड़े में विभक्त हुआ था। उन्होंने आजादी को कुछ इस तरह से महसूस किया था, "हिंदुस्तान आजाद हो गया था। पाकिस्तान अस्तित्व में आते ही आजाद हो गया था। इंसान राज्यों का गुलाम था। हठधर्मी का गुलाम, मज़हबी जुनून का गुलाम। पशुता और बर्बरता का गुलाम। परिणामस्वरूप दोनों तरफ दंगों का, हिंसा और भयावह साम्प्रदायिकता का काला दौर शुरू हुआ जो लगभग छः महीने तक दोनों मुल्कों में चलता रहा। आजाद हिंदुस्तान में, बंबई में मंटो लगभग पाँच महीने रहा मगर हर पल डरा-सहमा जैसे मौत उसका पीछा कर रही हो।"[5] दरअसल मंटो एक ऐसे समय में साहित्य की रचना कर रहे थे जब भारत और पाकिस्तान दो अलग मुल्क हो चुके थे। विभाजन के बाद के दंगों और विस्थापन की समस्या को इन्होंने करीब से देखा था। सिर्फ देखा ही नहीं था वरन् उसे सहा भी था और महसूस भी किया था। चूँकि मंटो को स्वयमं विभाजन के बाद पाकिस्तान में ही रहना पड़ गया था। हालाँकि मंटो जैसे लेखक को किसी देश की सीमा में बांध कर रख पाना मुश्किल है। फिर भी कुछ बौद्धिक वर्ग के लोग उन्हें पाकिस्तानी बनाने पर तुले हुए है। दरसल मंटो एक बड़े लेखक थे जिसे किसी सीमा के अन्दर बाँधा नहीं जा सकता है। मंटो की विभाजन से सम्बंधित कहानियों में उनकी शख्सियत झलकती है। मंटो के कहानी कहने के अपने अलग तरीके हैं।

वे सच को आईना की तरह स्पष्ट पेश करने की क्षमता रखते हैं। मंटो के शब्द सरल सहज एवं मिलावट से रहित होते हैं। यही कारण है कि उनकी कहानी कला औरो से काफी अलग है। उनकी कहानी पढ़ने से ऐसा लगता है मानो उनकी स्वयं की आत्मकथा पढ़ रहे हो। मंटो की यह ख़ास बात है कि वे आँखों देखे हाल का भी कुछ इस तरह कहानी का रूप देते हैं जिससे वह शुद्ध कहानी का रूप धारण कर लेता है। अपनी आत्मकथा को कहानी के रूप में प्रस्तुत करना मंटो के अलवा किसी और लेखक में न के बरबार देखने को मिलता है। कुछ इसी प्रकार की कहानी है 'गुरमुखसिंह की वसीयत'। विभाजन की त्रासदी से उपजी यह कहानी उस करुण कथा को कहती है जो आजादी के बाद देश में घटित हुई थी। विभाजन से पूर्व तथा विभाजन के बाद दंगों के दौरान जिस हालात ने जन्म लिया था उसने व्यक्ति के व्यवहारों में काफ़ी बदलाव ला दिया था। कल तक जो एक साथ बैठकर एक ही थाली में बेहिचक खाना पसंद करते थे। अब दंगों के बाद अचानक से एक-दूसरे का मूंह भी देखना नहीं चाहते हैं। हर तरफ हाहाकार, आगजनी और इसके बीच-बीच में सुनाई देती हृदयविदारक ध्वनि व्यक्ति के अस्तित्व पर चोट कर रही थी। 'गुरमुखसिंह की वसीयत' कहानी में मंटो ने इस दृश्य को कुछ इस तरह बयाँ किया है, "सुगरा अब कई दिनों से देख रही थी कि नज़दीक-दूर कहीं न कहीं आग लगी होती थी । शुरू-शुरू में तो फायर ब्रिगेड की 'टन-टन' सुनायी देती थी; पर अब वह भी बंद हो गयी थी, इसलिए कि जगह-जगह आग भड़कने लगी थी। रात को अब कुछ और ही नज़ारा होता। घुप्प अँधेरे में, आग के बड़े-बड़े शोले उठते, मानो देव हैं, जो अपने मुँह से आग के फव्वारे छोड़ रहे हैं। फिर अजीब-अजीब सी आवाजें आतीं, जो 'हर-हर महादेव' और 'अल्लाह-हो-अकबर' के नारों के साथ मिलकर, बहुत ही भयानक बन जातीं।"[6] सुगरा भले ही इन सब से आतंकित थी परन्तु उसके वालिद मियाँ साहब को ऐतवार था कि पहले कि तरह इस बार भी यह दंगा जल्द ही शांत हो जायेगा और फिर सामान्य हालात हो जाएँगे। परन्तु ऐसा इस बार नहीं हुआ लगातार कत्लेआम, आगजनी जारी रही। दोनों कौम एक-दूसरे के लाशों पर तांडव जारी रखा।

'गुरमुखसिंह की वसीयत' कहानी दरसल विभाजन पर आधारित हृदयविदारक कहानी है। परन्तु इस कहानी का उद्देश्य केवल दंगों एवं उसकी वीभत्सतता को दिखाना नहीं अपितु विभाजन से उपजी परिस्थितियों को बयाँ करना है। इस कहानी में एक ओर दंगों की दहशत को दिखाया गया है वही दूसरी और मियाँ अब्दुल हई तथा गुरमुखसिंह के माध्यम से हिन्दू-मुस्लिम एकता को भी दर्शाया है। गुरमुखसिंह सिख है तथा मियाँ साहब मुसलमान। एक तरफ शहर में धर्म के आधार पर हिन्दू-मुस्लिम में दंगे फसाद चल रहे हैं तो वही दूसरी तरफ इन दोनों पात्रों के माध्यम से आपसी सौहार्द को भी दिखाया है। गुरमुखसिंह मरते दम तक भी मियाँ साहब के लिए प्रेम का भाव रखते हैं तथा मरने के बाद भी इस प्रेम भाव को जिन्दा रखने के लिए अपने पुत्र को वसीयत के रूप में यही प्रेम भाव ही देकर वे परलोक सिधारते हैं। गुरमुखसिंह प्रत्येक वर्ष ईद के मौके पर मियाँ साहब के लिए प्रेमपूर्वक सेवैयाँ लता था। मरते वक्त उसने अपने बेटे संतोख से यही आखिरी इच्छा जाहिर की कि तुम भी इस परम्परा को आगे बढ़ाना। संतोख ने इस प्रेमसंबंध को बखूबी आगे बढ़ाया तथा गुरमुख सिंह की मृत्यु के पश्चात संतोख मियाँ साहब के वहां पहुँचता है तथा इस बात की पुष्टि करता है कि गुरमुख सिंह मियाँ साहब से कितना प्रेम करते थे। संतोख कहता है, "मरने से पहले उन्होंने ये ताकीद की थी की देखो बेटा, मैं जज साहब की खिदमत में पूरे दस बरस से हर छोटी ईद पर सेवैयाँ ले जाता रहा हूँ; यह काम मेरे मरने के बाद तुम्हें करना होगा।.....मैंने उन्हें वचन दिया था, सो पूरा कर रहा हूँ ..... सेवैयाँ ले लीजिये"[7] कहानी में इस तरह दंगों और मैत्री भाव का एक साथ दिखाना यह दिखाता है कि मंटो वास्तव में यथार्थवादी लेखक थे जो यथार्थ को यथार्थ तथा विद्रूप को विद्रूप रूप में दिखाने की शक्ति रखते हैं। उनकी कहानियों में नैतिकता का

पाठ होता है। वे बेहद ही सुलझे हुए इन्सान थे यही कारण है कि वह अपनी कहानियों में संतुलन बनाये रखने में सक्षम हैं। विभाजन की त्रासदी को जिस तरह से उन्होंने झेला है और जिस प्रकार इस लड़ाई को स्वंय से भी लड़ते हुए आत्म संवाद जारी रखा है उसी की प्रतिच्छाया उनकी प्रत्येक कहानियों में झलकती है। उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से विभाजन से उभरे हादसे और उससे मिले दर्द को पाठकों के रूह की गहराइयों तक पहुँचाया है।

मंटो की विभाजन से सम्बंधित कहानियाँ दिलों में हलचल पैदा करती है। इनकी कहानियों में महज सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक स्तर पर सताये गए व्यक्ति की तकलीफों की दास्ताँ नहीं है अपितु उन तकलीफों से उभरने की भी है। मंटो ने विभाजन के दौरान जो दर्द सहा था उस दर्द को ही वो अपनी गुरमुखसिंह की वसीयत, ठंडा गोश्त, मोजेल, टोबा टेक सिंह, याजिद, खोल दो, टिटवाल का कुत्ता, आखिरी सैल्यूट, खुदा की कसम, शरीफन और स्याह हाशिये जैसी कहानियों में व्यक्त करते हैं। सहाय कहानी के माध्यम से भी उन्होंने इस दर्द को दीखाने की कोशिश की है। सांप्रदायिक दंगे परिस्थितियों में किस तरह बदलाव लाते हैं, जिससे अच्छे खासे मित्रों को भी एक-दूसरे के लहू का प्यासा बना दिए जाता है। 'सहाय' कहानी में दंगों से उपजी ये परिस्थितियाँ व्यक्ति की मानसिकता को भी बदल कर रख देती है। बदली हुई मानसिकता की एक झलक 'सहाय' कहानी के पात्र जुगल और मुमताज के संवादों में देखा जा सकता है, "मैं सोच रहा हूँ कि हमारे मुहल्ले में दंगा शुरू हो जाए तो मैं क्या करूँगा।" मुमताज ने उससे पूछा - "क्या करोगे?" जुगल ने बड़ी संजीदगी के साथ जवाब दिया - "मैं सोच रहा हूँ, बहुत मुमकिन है मैं तुम्हें मार डालूं।"[8] मंटो की कहानी में इस तरह की मानसिकता को उनकी कल्पना नहीं कह सकते। मुमकिन है मंटो ने अपने आस-पास की बदलती मिजाज को ही अपनी कहानियों में रेखांकित किया हो।

वह कितना दहशतगर्द मंजर रहा होगा जब एक ही थाली के चट्टे-बट्टे एक-दूसरे के खून से नहाने लगे होंगे। इस दहशत से बचने के क्रम में जो विस्थापन हुई और विस्थापन के समय का वह दृश्य जब रेल के डिब्बों में शरणार्थियों की लाशों का ढेर आता-जाता था। निश्चय ही वह दिल को दहला देने वाला था। विस्थापन का यह मंजर भारतीय इतिहास में काला अध्याय के रूप में ही याद किया जाएगा। मंटो भी विस्थापन के इस दुश्चक्र से बच नहीं सके थे। हालाँकि विभाजन के बाद भी भारत में उनका आना-जाना लगा रहा और आने-जाने के क्रम में उन्होंने एक बात महसूस की थी कि विभाजन के बहुत बाद तक भी दोनों मुल्कों में कहीं शांति नहीं थी। हर जगह वही दंगे, आगजनी, बालात्कार जारी थे। चूँकि मंटो स्वयं इस विभाजन के शिकार हुए थे यही कारण है कि लाहौर पंहुचने पर भी अपने को मुहाजिर समझते थे। नरेंद्र मोहन इस बात का जिक्र करते हुए कहते है कि, "बंबई से लाहौर पहुँचने पर मंटो शरणार्थी कैम्पों की बदहाली देखकर काँप उठा था। उसने महसूस किया था कि वह खुद मुहाजिर है, वैसे ही जैसे उधर के आए हुए लोग इधर और इधर से गए हुए लोग उधर मुहाज़िर है, मुहाज़िर होने का यह एहसास उसे तोड़ता सताता रहा"[9] मुहाज़िर होने का यह एहसास उस समय के विस्थापितों का विभाजन का सबसे बड़ा दर्द था। कोई भी समाज इस विस्थापन से खुश नहीं था। यही कारण है कि मंटो की 'गुरमुख सिंह की वसीयत' कहानी में मियाँ साहब अंत समय तक भी विस्थापित नहीं हो सके और अंततः उन्हें संभवतः वहीं अपनी जान गवानी पड़ी। जब भी उन्हें कहीं सुरक्षित जगह पर चलने को कहा जाता था तब वो एक ही बात कहते थे, "बेकार घबराने की कोई जरूरत नहीं। हालात बहुत जल्द ठीक हो जाएँगे।"[10] मियाँ साहब की उक्त उक्ति से सहज ही पता चलता है कि मंटो न विभाजन के समर्थकों में से थे न ही विस्थापन के पक्ष में। यही कारण है की विस्थापन की दंश को झेलते हुए मंटो की दिमागी हालत भी ख़राब हो गयी थी।

निष्कर्ष

आजादी के इतने वर्षों बाद भी मंटो का याद आना अस्वाभाविक नहीं है क्योंकि आज भी दंगों का सिलसिला जारी है। कभी गौ रक्षा के नाम पर, कभी

इस्लाम के खतरे के नाम पर तो कभी हिंदुत्व के खतरे के नाम पर, कभी जय श्री राम के नाम पर। अचानक से एक भीड़ उमड़ती है और किसी की भी जान ले ली जाती है। और राजनीतिक पार्टियाँ इन दंगों को सुलगा कर उसमें साम्प्रदायिकता का घी डालकर बेरहमी से उस पर स्वार्थ की रोटियाँ सेकती है। कुछ वर्षों पूर्व बंगाल में लोकसभा चुनाव के दौरान हुए सांप्रदायिक दंगा को याद किया जा सकता है। जिसमें कई बेकसूर माँओं की गोद और मांग दोनों एक साथ सुनी हो गयी थी। परन्तु सत्ताधारियों को इसका लेशमात्र भी अफ़सोस नहीं। पिछले कुछ वर्षों की यह विडंबना है कि 'जय श्री राम' के नाम को कुछ लोगों ने इस तरह से पेश किया है कि राम के नाम से भी लोगों में डर बसने लगा है। कि कब एक झुंड 'जय श्री राम' का नाम लेकर गरजता आएगा और नरसंहार कर जाएगा। परन्तु मंटो धर्मनिरपेक्ष थे| वे मानव धर्म में विश्वास रखते थे। उन्हें दंगे, जिहाद कतई पसंद नहीं थे। उन्हें मानव पसंद था। इसी वजह से वह सदैव दोनों धर्मों के कट्टर पंथियों का जमकर क्लास लेते थे। 'सहाय' कहानी में उनकी मानव प्रेमी भाव को सहज ही देखा जा सकता है, "यह मत कहो की एक लाख हिन्दू एक लाख मुसलमान मरे हैं-यह कहो कि दो लाख इन्सान मरे हैं।"[11] मानवता के प्रति यही भाव मंटो को मंटो बनाती है।

सन्दर्भ सूची

1. आलोचना, जनवरी मार्च 2019 पृष्ठ सं. 29
2. शम्सुल इस्लाम, अनुवादक, सुभाष गाताडे, भारत में अलगाववाद और धर्म, पृष्ठ सं. 11
3. सं.-राजकिशोर, भारतीय मुसलमान मिथक और यथार्थ, पृष्ठ सं.-89
4. वही पृष्ठ सं.-89
5. सं. नरेंद्र मोहन, भूमिका, मंटो विभाजन की कहानियाँ, पृष्ठ सं. 9
6. वही पृष्ठ सं. 90
7. वही पृष्ठ सं. 94
8. वही, पृष्ठ सं. 48
9. वही पृष्ठ सं. 49
10. वही पृष्ठ सं. 90
11. वही पृष्ठ सं 48